Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 3 | Issue 3 | (July - September 2026)

श्रीमंत शंकरदेव के भक्ति पदों और हिंदी संत काव्य (कबीर एवं तुलसीदास) में दार्शनिक समानताएँ : एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. उत्पल सैकिया
सहायक प्रोफेसर, असमिया विभाग, कलाबारी कॉलेज, कालाबारी, जिला: विश्वनाथ (असम), भारत

सारांश

भारतीय भक्ति आंदोलन, जो मध्यकाल में देश के विभिन्न भू-भागों में लगभग समानांतर रूप से प्रस्फुटित हुआ, अपनी क्षेत्रीय भाषिक तथा सांप्रदायिक विविधताओं के बावजूद कुछ गहन दार्शनिक एवं सामाजिक समानताएँ साझा करता है। असम में श्रीमंत शंकरदेव (सन् १४४९-सन् १५६८) द्वारा प्रवर्तित एकशरण नाम-धर्म तथा हिंदी भाषी क्षेत्र में संत कबीर (लगभग सन् १४४०-सन् १५१८) एवं गोस्वामी तुलसीदास (लगभग सन् १५३२-सन् १६२३) की काव्य-परंपराएँ, यद्यपि भिन्न भाषिक माध्यमों (ब्रजावली-असमिया, सधुक्कड़ी हिंदी, तथा अवधी) में रचित हैं। भक्ति को मोक्ष के प्रधान मार्ग के रूप में प्रतिष्ठित करने, गुरु-महिमा, नाम-स्मरण की केंद्रीयता तथा भाषिक लोकतंत्रीकरण की दृष्टि से उल्लेखनीय समानताएँ प्रदर्शित करती हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र गुणात्मक तुलनात्मक पाठ-विश्लेषण पद्धति के माध्यम से शंकरदेव के बरगीत एवं कीर्तन-घोषा के चयनित पदों की तुलना कबीर के दोहों, साखियों तथा तुलसीदास के रामचरितमानस के चयनित अंशों से करता है। विश्लेषण चार प्रमुख दार्शनिक आयामों पर केंद्रित है: निर्गुण-सगुण द्वंद्व एवं एकशरण की अवधारणा, नाम-स्मरण की केंद्रीयता, जाति-वर्ण व्यवस्था तथा सामाजिक समानता के प्रति दृष्टिकोण तथा लोकभाषा में रचना के माध्यम से भक्ति के लोकतंत्रीकरण की प्रवृत्ति। निष्कर्ष यह इंगित करते हैं कि यद्यपि शंकरदेव तथा तुलसीदास दोनों सगुण भक्ति-परंपरा से संबद्ध हैं, किंतु कबीर निर्गुण परंपरा के प्रतिनिधि माने जाते हैं । तीनों संत-कवियों में एकनिष्ठ भक्ति (एकशरणता), गुरु-आश्रय, तथा भक्ति-मार्ग की सार्वभौमिक सुलभता के सिद्धांत में गहन साम्य विद्यमान है, जो मध्यकालीन भारतीय भक्ति-चेतना की अंतर्निहित एकता को प्रकट करता है।

बीज शब्द : श्रीमंत शंकरदेव, एकशरण नाम-धर्म, कबीर, तुलसीदास, भक्ति आंदोलन, निर्गुण-सगुण, तुलनात्मक साहित्य

1.0 प्रस्तावना

मध्यकालीन भारतीय भक्ति आंदोलन, जो लगभग सातवीं-आठवीं शताब्दी में दक्षिण भारत से आरंभ होकर पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी तक उत्तर तथा पूर्वोत्तर भारत में व्यापक रूप से फैला, भारतीय धार्मिक तथा सांस्कृतिक इतिहास की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण परिघटना है। यह आंदोलन, अपनी क्षेत्रीय भिन्नताओं के बावजूद, कुछ मूलभूत सिद्धांतों ईश्वर के प्रति व्यक्तिगत, भावनात्मक भक्ति, कर्मकांड तथा जाति-आधारित भेदभाव का विरोध, तथा संस्कृत के स्थान पर लोकभाषाओं में धार्मिक साहित्य की रचना को साझा करता है। असम में श्रीमंत शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित एकशरण नाम-धर्म तथा उत्तर भारत में संत कबीर एवं गोस्वामी तुलसीदास की काव्य-परंपराएँ इसी व्यापक भक्ति-चेतना की क्षेत्रीय अभिव्यक्तियाँ मानी जाती हैं। श्रीमंत शंकरदेव असम के महान संत, समाज-सुधारक, कवि, नाटककार, तथा संगीतज्ञ थे, जिन्होंने पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एकशरण नाम-धर्म की स्थापना की, जो कृष्ण (विष्णु के अवतार)

के प्रति एकनिष्ठ भक्ति, नाम-कीर्तन की केंद्रीयता, तथा नामघर के माध्यम से सामूहिक, जाति-निरपेक्ष उपासना पर आधारित है। उनकी प्रमुख रचनाओं में कीर्तन-घोषा, बरगीत (भक्ति-गीत), तथा अंकिया नाट (एकांकी नाटक) सम्मिलित हैं, जो ब्रजावली नामक एक साहित्यिक मिश्रित भाषा (असमिया-मैथिली-ब्रजभाषा का संयोजन) में रचित हैं।

इसके समानांतर, संत कबीर, जो पंद्रहवीं शताब्दी में काशी में सक्रिय थे, निर्गुण भक्ति-परंपरा के सर्वाधिक प्रभावशाली प्रतिनिधि माने जाते हैं, जिन्होंने निराकार, निर्गुण ब्रह्म की उपासना, मूर्तिपूजा तथा बाह्य कर्मकांड के विरोध, तथा हिंदू-मुस्लिम दोनों धार्मिक परंपराओं के आलोचनात्मक संश्लेषण के माध्यम से एक विशिष्ट काव्य-दर्शन प्रस्तुत किया, जो उनके दोहों तथा साखियों में संकलित है तथा सधुक्कड़ी नामक मिश्रित लोकभाषा में रचित है। इसके विपरीत, गोस्वामी तुलसीदास, जो सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में सक्रिय थे, सगुण राम-भक्ति परंपरा के प्रमुख प्रतिनिधि हैं, जिन्होंने अपनी कालजयी रचना रामचरितमानस में राम को सगुण, साकार ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए, अवधी भाषा में भक्ति, धर्म, तथा सामाजिक-नैतिक व्यवस्था का समन्वित चित्रण प्रस्तुत किया। यद्यपि शंकरदेव, कबीर, तथा तुलसीदास भौगोलिक, भाषिक, तथा सांप्रदायिक दृष्टि से पृथक-पृथक परंपराओं से संबद्ध प्रतीत होते हैं, इन तीनों संत-कवियों के काव्य में गहन दार्शनिक समानताएँ विद्यमान हैं, जिनका व्यवस्थित, तुलनात्मक विश्लेषण असमिया तथा हिंदी साहित्य-अध्ययन के मध्य एक महत्त्वपूर्ण अंतर-क्षेत्रीय शोध-अंतराल को संबोधित कर सकता है। प्रस्तुत अध्ययन के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं: प्रथम, शंकरदेव, कबीर, तथा तुलसीदास के चयनित पदों का तुलनात्मक पाठ-विश्लेषण प्रस्तुत करना; द्वितीय, इन तीनों परंपराओं में निर्गुण-सगुण द्वंद्व, नाम-महिमा, तथा सामाजिक समता जैसे दार्शनिक आयामों की समानताओं तथा भिन्नताओं की पहचान करना; तथा तृतीय, भाषिक लोकतंत्रीकरण की एक साझा रणनीति के रूप में इन तीनों परंपराओं की भूमिका का विश्लेषण करना।

2.0 साहित्य समीक्षा

शंकरदेव तथा असमिया वैष्णव आंदोलन पर आधारभूत शोध महेश्वर नियोग के कार्य में निहित है। उन्होंने असम में वैष्णव धर्म तथा आंदोलन के प्रारंभिक इतिहास का विस्तृत, प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत करते हुए एकशरण नाम-धर्म के दार्शनिक आधारों, विशेषकर इसकी एकनिष्ठ, कृष्ण-केंद्रित भक्ति-अवधारणा, की व्याख्या की है। नियोग के अनुसार, शंकरदेव का एकशरणवाद परंपरागत हिंदू बहुदेववाद से एक स्पष्ट प्रस्थान प्रस्तुत करता है, जो एकेश्वरवादी भक्ति-दर्शन की दिशा में उन्मुख है।

कबीर पर पाश्चात्य तथा भारतीय दोनों प्रकार की विद्वत्तापूर्ण समीक्षा विस्तृत है। शार्लट वॉदविल के मौलिक अध्ययन ने कबीर के जीवन तथा काव्य की ऐतिहासिक-आलोचनात्मक पड़ताल प्रस्तुत करते हुए यह स्थापित किया कि कबीर की निर्गुण भक्ति हिंदू भक्ति-परंपरा तथा सूफी रहस्यवाद दोनों के तत्वों का एक विशिष्ट संश्लेषण प्रस्तुत करती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के हिंदी में रचित प्रामाणिक अध्ययन ने कबीर को निर्गुण संत-परंपरा के भीतर स्थापित करते हुए उनकी सामाजिक-सुधारवादी चेतना, विशेषकर जाति तथा धार्मिक कर्मकांड के प्रति उनकी तीक्ष्ण आलोचना, को रेखांकित किया। लिंडा हेस के अनुवाद-कार्य ने कबीर के बीजक की पाश्चात्य विद्वत-जगत में पहुँच सुनिश्चित की तथा उनके दर्शन की सैद्धांतिक जटिलता को उजागर किया।

तुलसीदास तथा रामचरितमानस पर फिलिप लुटगेनडॉर्फ का अध्ययन विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसने रामचरितमानस के पाठ-इतिहास तथा इसकी सामाजिक-सांस्कृतिक भूमिका का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए तुलसीदास के सगुण राम-भक्ति दर्शन को मध्यकालीन उत्तर भारतीय समाज के व्यापक सामाजिक-धार्मिक संदर्भ में

स्थापित किया है। जॉन स्ट्रैटन हॉले के तुलनात्मक अध्ययन, जिसमें कबीर सहित अन्य भक्ति-कवियों की काव्य-परंपराओं की तुलनात्मक जाँच हुई है, इस क्षेत्र में तुलनात्मक पद्धति की उपयोगिता को प्रदर्शित करता है। उपर्युक्त समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि शंकरदेव, कबीर, तथा तुलसीदास पर पृथक-पृथक विद्वत्तापूर्ण साहित्य अत्यंत समृद्ध है, तथापि इन तीनों परंपराओं को एक समेकित, तुलनात्मक, दार्शनिक ढाँचे के अंतर्गत साथ लाने वाले अध्ययन अपेक्षाकृत दुर्लभ हैं, विशेषकर असमिया-भाषी तथा हिंदी-भाषी विद्वत-समुदायों के मध्य भाषिक तथा संस्थागत दूरी के कारण। प्रस्तुत अध्ययन इसी अंतराल को संबोधित करने का प्रयास करता है।

3.0 पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक, तुलनात्मक-विश्लेषणात्मक शोध-अभिकल्प का अनुसरण करता है। चूँकि अध्ययन की विषय-वस्तु काव्य-पाठों की दार्शनिक विषय-वस्तु का विश्लेषण है, अध्ययन में व्याख्यात्मक तथा विषयवस्तु-विश्लेषण दोनों पद्धतियों का समन्वित प्रयोग किया गया है।

3.1 पाठ-स्रोत

शंकरदेव संबंधी प्राथमिक पाठ-स्रोतों में कीर्तन-घोषा तथा बरगीत-संग्रह के मानक संस्करण सम्मिलित हैं। कबीर संबंधी प्राथमिक स्रोतों में कबीर-ग्रंथावली तथा बीजक के मानक संस्करण सम्मिलित हैं। तुलसीदास संबंधी प्राथमिक स्रोत रामचरितमानस का मानक गीता प्रेस संस्करण है। तीनों ही स्रोतों हेतु प्रामाणिक विद्वत्तापूर्ण संस्करणों तथा उनसे संबद्ध अंग्रेज़ी/हिंदी अनुवादों तथा टीकाओं का उपयोग तुलनात्मक संदर्भ हेतु किया गया है।

3.2 प्रतिचयन प्रक्रिया

यादृच्छिक प्रतिचयन के स्थान पर उद्देश्यपूर्ण प्रतिचयन रणनीति अपनाई गई है, जिसमें प्रत्येक कवि के काव्य-संग्रह से उन पदों, दोहों, तथा चौपाइयों का चयन किया गया जो चार पूर्व-निर्धारित दार्शनिक विषयों — (क) ईश्वर-स्वरूप (निर्गुण/सगुण), (ख) नाम-महिमा, (ग) जाति एवं सामाजिक समता, तथा (घ) गुरु-महिमा— से प्रत्यक्षतः संबंधित हैं। प्रत्येक कवि से न्यूनतम पंद्रह प्रतिनिधि पद/दोहे/चौपाइयाँ चयनित की गईं, जिससे कुल न्यूनतम पैंतालीस पाठ-इकाइयों का तुलनात्मक कॉर्पस निर्मित हुआ।

3.3 विश्लेषणात्मक ढाँचा

चयनित पाठ-इकाइयों का विश्लेषण विषयवस्तु-विश्लेषण की मानक प्रक्रिया के अनुसार किया गया, जिसमें प्रत्येक पाठ-इकाई को पूर्व-निर्धारित चार दार्शनिक कोटियों के अंतर्गत कोडित किया गया, तत्पश्चात प्रत्येक कोटि के अंतर्गत तीनों कवियों के मध्य समानताओं तथा भिन्नताओं का व्यवस्थित तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक कवि की भाषिक चयन-नीति (लोकभाषा बनाम शास्त्रीय भाषा) का विश्लेषण भक्ति-आंदोलन के व्यापक सामाजिक-भाषिक संदर्भ में किया गया।

3.4 विश्वसनीयता एवं वैधता

गुणात्मक पाठ-विश्लेषण की व्याख्यात्मक प्रकृति को दृष्टिगत रखते हुए, विश्लेषण की वैधता सुनिश्चित करने हेतु प्रत्येक व्याख्या को संबंधित प्राथमिक पाठ के प्रत्यक्ष उद्धरण-संदर्भ (यद्यपि दीर्घ उद्धरण से बचते हुए) तथा विद्यमान विद्वत्तापूर्ण द्वितीयक स्रोतों दोनों से समर्थित किया गया है। जहाँ विद्वानों के मध्य व्याख्यात्मक मतभेद विद्यमान हैं (जैसे

कबीर की सांप्रदायिक पृष्ठभूमि संबंधी विवाद), वहाँ विभिन्न दृष्टिकोणों को संतुलित रूप से प्रस्तुत किया गया है।

3.5 सीमाएँ

प्रस्तुत अध्ययन की कुछ पद्धतिगत सीमाएँ स्वीकार्य हैं। प्रथम, गुणात्मक, व्याख्यात्मक पद्धति होने के कारण निष्कर्षों में शोधकर्ता की व्याख्यात्मक स्थिति की भूमिका को पूर्णतः समाप्त नहीं किया जा सकता। द्वितीय, तीनों कवियों की रचनाओं के मूल भाषिक स्वरूप (ब्रजावली, सधुक्कड़ी, अवधी) में सूक्ष्म अर्थ-छटाएँ अनुवाद अथवा तुलनात्मक प्रस्तुति में आंशिक रूप से लुप्त हो सकती हैं। तृतीय, कबीर की ऐतिहासिकता तथा पाठ-प्रामाणिकता संबंधी विद्वत्तापूर्ण विवाद (विशेषकर मौखिक परंपरा से लिखित संकलन की प्रक्रिया) व्याख्या की निश्चितता को सीमित करते हैं।

4.0 आँकड़ा विश्लेषण एवं विवेचना

4.1 निर्गुण-सगुण द्वंद्व एवं एकशरणता की अवधारणा

शंकरदेव, कबीर, तथा तुलसीदास के मध्य सर्वाधिक स्पष्ट दार्शनिक भिन्नता ईश्वर-स्वरूप संबंधी उनकी अवधारणाओं में दृष्टिगोचर होती है। कबीर का दर्शन दृढ़तापूर्वक निर्गुण-केंद्रित है — उनके दोहे बारंबार निराकार, नाम-रहित, गुण-रहित ब्रह्म की उपासना पर बल देते हैं तथा मूर्तिपूजा एवं मंदिर-मस्जिद दोनों की बाह्यपरक उपासना-पद्धतियों की समान रूप से आलोचना करते हैं। इसके विपरीत, तुलसीदास का दर्शन स्पष्टतः सगुण-केंद्रित है, जिसमें राम को साकार, मानवीय रूप में अवतरित परब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, तथा भक्त-भगवान के मध्य व्यक्तिगत, भावनात्मक संबंध पर बल दिया गया है। शंकरदेव का एकशरण दर्शन इन दोनों ध्रुवों के मध्य एक विशिष्ट स्थिति ग्रहण करता है — यद्यपि कृष्ण को सगुण, साकार रूप में स्वीकार किया गया है, तथापि एकशरणवाद का केंद्रीय बल एकनिष्ठता (एक ईश्वर के प्रति अनन्य शरणागति) पर है, जो बहुदेववादी उपासना-पद्धति की अस्वीकृति के रूप में कबीर की एकेश्वरवादी प्रवृत्ति के निकट प्रतीत होता है, भले ही स्वरूप-संबंधी अवधारणा में भिन्नता बनी रहे।

आयाम	शंकरदेव (एकशरण)	कबीर (निर्गुण)	तुलसीदास (सगुण)
ईश्वर-स्वरूप	सगुण किंतु एकनिष्ठ (कृष्ण)	निर्गुण, निराकार	सगुण, साकार (राम)
उपासना-केंद्र	नाम-कीर्तन, नामघर	आंतरिक साधना, सत्संग	राम-भक्ति, कथा-श्रवण
मूर्तिपूजा के प्रति दृष्टिकोण	गौण, नाम को प्राथमिकता	स्पष्ट अस्वीकृति	स्वीकार्य किंतु भक्ति-गौण
साहित्यिक माध्यम	ब्रजावली-असमिया	सधुक्कड़ी हिंदी	अवधी

4.2 नाम-महिमा की केंद्रीयता

तीनों ही परंपराओं में नाम-स्मरण अथवा नाम-कीर्तन को भक्ति-साधना के केंद्रीय, अत्यंत सुलभ, तथा सर्वाधिक प्रभावी मार्ग के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। शंकरदेव के एकशरण नाम-धर्म में नाम-कीर्तन को स्वयं धर्म का मूल आधार माना गया है — नामघर, सामूहिक नाम-कीर्तन हेतु समर्पित संस्था, इस दर्शन की संस्थागत अभिव्यक्ति है। कबीर के दोहों में भी राम-नाम के स्मरण को समस्त कर्मकांडों तथा तीर्थाटन से श्रेष्ठतर साधना के रूप में बारंबार प्रतिपादित किया गया है, यद्यपि कबीर का "राम" निर्गुण, सार्वभौमिक सत्ता का प्रतीक है, न कि दशरथ-पुत्र राम।

तुलसीदास के रामचरितमानस में भी राम-नाम की महिमा को अत्यंत उच्च स्थान प्रदान किया गया है, यहाँ तक कि कतिपय स्थलों पर नाम को स्वयं राम से भी अधिक सुलभ तथा शक्तिशाली बताया गया है। इस प्रकार, नाम-केंद्रित भक्ति तीनों परंपराओं की एक सुदृढ़ साझा आधारशिला के रूप में उभरती है, जो निर्गुण-सगुण दार्शनिक भिन्नता से परे एक व्यावहारिक, सुलभ साधना-मार्ग प्रस्तुत करती है।

4.3 जाति, सामाजिक समता, तथा भक्ति की सुलभता

सामाजिक समता के प्रश्न पर तीनों परंपराओं में उल्लेखनीय समानता के साथ-साथ महत्त्वपूर्ण भिन्नता भी दृष्टिगोचर होती है। शंकरदेव का एकशरण नाम-धर्म जाति-निरपेक्ष सामूहिक उपासना पर आधारित है — नामघर में समस्त जातियों तथा सामाजिक वर्गों के भक्तों की समान सहभागिता का सिद्धांत स्थापित किया गया, जो तत्कालीन असमिया समाज में एक उल्लेखनीय समतावादी सुधार माना जाता है। कबीर की सामाजिक आलोचना इससे भी अधिक तीक्ष्ण तथा प्रत्यक्ष है— उनके दोहे जाति-व्यवस्था, ब्राह्मणवादी कर्मकांड, तथा हिंदू-मुस्लिम दोनों धार्मिक संस्थाओं की खुली, बेबाक आलोचना प्रस्तुत करते हैं, जिससे कबीर को मध्यकालीन भारत के सर्वाधिक मुखर सामाजिक-आलोचक संत के रूप में देखा जाता है। तुलसीदास का दृष्टिकोण इस संदर्भ में अपेक्षाकृत अधिक रूढ़िवादी माना जाता है— यद्यपि रामचरितमानस भक्ति की सार्वभौमिक सुलभता (यहाँ तक कि निम्न वर्णों तथा स्त्रियों हेतु भी) पर बल देता है, तथापि तुलसीदास वर्णाश्रम व्यवस्था तथा सामाजिक-नैतिक व्यवस्था (मर्यादा) के व्यापक ढाँचे को अस्वीकार नहीं करते, अपितु भक्ति को इस ढाँचे के भीतर ही एक सार्वभौमिक, समावेशी मार्ग के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार, सामाजिक समता के प्रश्न पर एक स्पष्ट क्रम दृष्टिगोचर होता है, जिसमें कबीर सर्वाधिक मुखर सुधारवादी छोर पर, शंकरदेव मध्यवर्ती, संस्थागत-सुधारवादी स्थिति पर, तथा तुलसीदास अपेक्षाकृत रूढ़िसंगत, समावेशी-किंतु-व्यवस्था-सम्मत स्थिति पर स्थित प्रतीत होते हैं।

4.4 भक्ति के लोकतंत्रीकरण हेतु भाषिक रणनीति

तीनों संत-कवियों की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण साझा रणनीति संस्कृत के स्थान पर लोकभाषा में रचना करने का निर्णय है, जो भक्ति-साहित्य को शास्त्रीय भाषा में दक्ष अभिजात वर्ग की सीमाओं से मुक्त कर सामान्य जन-मानस तक सुलभ बनाने की एक जानबूझकर अपनाई गई सांस्कृतिक-राजनीतिक रणनीति मानी जाती है। शंकरदेव ने ब्रजावली नामक विशिष्ट साहित्यिक मिश्रित भाषा का सृजन किया, जो असमिया, मैथिली, तथा ब्रजभाषा के तत्वों को संयोजित करती है तथा जिसका उद्देश्य असम की सीमाओं से परे व्यापक वैष्णव भक्त-समुदाय तक पहुँच स्थापित करना प्रतीत होता है। कबीर की सधुक्कड़ी भाषा विभिन्न क्षेत्रीय बोलियों (अवधी, ब्रज, भोजपुरी, खड़ी बोली, फारसी-अरबी शब्दावली) से निर्मित, जानबूझकर संकरित, भ्रमणशील साधु-समुदाय की सर्वग्राह्य भाषा है। तुलसीदास ने अवधी भाषा को, जो तत्कालीन एक प्रतिष्ठित लोकभाषा थी, संस्कृत रामायण-परंपरा के समानांतर एक स्वतंत्र, सुगम भक्ति-काव्य-माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित किया, जिसके कारण रामचरितमानस उत्तर भारत के सामान्य जन-मानस के लिए अत्यंत सुलभ तथा लोकप्रिय ग्रंथ बना। यह साझा भाषिक रणनीति इस शोध-पत्र के अनुसार, तीनों परंपराओं की सबसे गहन संरचनात्मक समानता है, जो दार्शनिक विषयवस्तु से भी अधिक, भक्ति-आंदोलन की व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक परियोजना अर्थात् धार्मिक अनुभव का लोकतंत्रीकरण को प्रकट करती है।

4.5 गुरु-महिमा

अंततः, तीनों परंपराओं में गुरु के प्रति असीम श्रद्धा तथा गुरु को साक्षात् ईश्वर-तुल्य अथवा ईश्वर से भी श्रेष्ठ मार्गदर्शक

के रूप में प्रतिष्ठित करने की प्रवृत्ति समान रूप से दृष्टिगोचर होती है। शंकरदेव के एकशरण दर्शन में गुरु-आश्रय (गुरुशरण) चार प्रमुख "शरण" तत्वों में से एक है। कबीर के अत्यंत प्रसिद्ध दोहे, जिनमें गुरु को गोविंद (ईश्वर) से भी पूर्व वंदनीय बताया गया है, गुरु-महिमा की चरम अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते हैं। तुलसीदास भी रामचरितमानस के आरंभ में ही गुरु-वंदना को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं तथा गुरु-कृपा को भक्ति-मार्ग की अनिवार्य पूर्वशर्त के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह साझा गुरु-केंद्रितता भारतीय भक्ति-परंपरा की एक गहन संरचनात्मक विशेषता का संकेत देती है, जो व्यक्तिगत, प्रत्यक्ष ईश्वर-अनुभूति की अपेक्षा गुरु-मध्यस्थ, संस्थागत-सामुदायिक भक्ति-अभ्यास को प्राथमिकता देती प्रतीत होती है।

5.0 निष्कर्ष

प्रस्तुत तुलनात्मक अध्ययन ने श्रीमंत शंकरदेव के भक्ति-पदों तथा हिंदी संत कबीर एवं तुलसीदास के काव्य में विद्यमान दार्शनिक समानताओं तथा भिन्नताओं का व्यवस्थित विश्लेषण प्रस्तुत किया है। विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि निर्गुण-सगुण द्वंद्व तथा सामाजिक समता के प्रश्न पर तीनों परंपराओं में उल्लेखनीय भिन्नताएँ विद्यमान हैं— कबीर निर्गुण, सामाजिक रूप से सर्वाधिक मुखर-सुधारवादी छोर पर स्थित हैं, तुलसीदास सगुण, अपेक्षाकृत व्यवस्था-सम्मत छोर पर, तथा शंकरदेव इन दोनों के मध्य एक विशिष्ट, एकनिष्ठ-सगुण, संस्थागत-समतावादी स्थिति ग्रहण करते हैं। तथापि, नाम-महिमा, गुरु-आश्रय, तथा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रूप से, संस्कृत के स्थान पर लोकभाषा में रचना के माध्यम से भक्ति के लोकतंत्रीकरण की साझा रणनीति, तीनों परंपराओं को एक गहन, अंतर्निहित दार्शनिक तथा सांस्कृतिक एकता में आबद्ध करती है।

यह अध्ययन असमिया तथा हिंदी साहित्य-अध्ययन के मध्य एक महत्त्वपूर्ण अंतर-क्षेत्रीय सेतु प्रस्तुत करने का प्रयास करता है, तथा यह सुझाव देता है कि मध्यकालीन भारतीय भक्ति-आंदोलन को किसी एकल भाषिक अथवा क्षेत्रीय परंपरा तक सीमित करके नहीं, अपितु एक व्यापक, अंतर्क्षेत्रीय, तुलनात्मक ढाँचे के अंतर्गत अध्ययन किए जाने पर ही इसकी वास्तविक ऐतिहासिक तथा दार्शनिक व्यापकता का समुचित मूल्यांकन संभव है। भविष्य के शोध हेतु, प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षों को अन्य समकालीन भक्ति-परंपराओं (जैसे महाराष्ट्र के वारकरी संप्रदाय, बंगाल के चैतन्य-भक्ति, अथवा राजस्थान की मीराबाई परंपरा) तक विस्तारित करने वाले बहु-क्षेत्रीय तुलनात्मक अध्ययनों की अनुशंसा की जाती है, जो भारतीय भक्ति-चेतना की समग्र, अखिल-भारतीय प्रकृति की और गहन समझ प्रदान कर सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. गुप्ता, एम. पी. (संपादक), (2001), Kabir Granthawali, इलाहाबाद, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड।
2. गोस्वामी, उपेन्द्रनाथ, (2012), Vaishnav Bhakti-Dhara Aru Santa Katha, गुवाहाटी, मणि मानिक प्रकाश।
3. गोहाईं, हीरेण, (1987), Assamiya Jatiya Jibanat Mahapurushiya Parampara, गुवाहाटी, लॉयर्स बुक स्टॉल।
4. तुलसीदास, (2008), रामचरितमानस, गोरखपुर, गीता प्रेस।
5. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, (1942), Kabir (कबीर), दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।

6. नेयोग, महेश्वर, (1965), Sankaradeva and His Times: Early History of the Vaishnava Faith and Movement in Assam, गुवाहाटी, गौहाटी यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. Neog, Maheswar, (2006), Sri Sri Sankaradeva, गुवाहाटी, चंद्र प्रकाश।
8. भटनागर, रामरतन, (1966), Tulsi Sahitya Ki Bhumika, इलाहाबाद, राम नारायण लाल।
9. बार्थवाल, पीताम्बरदत्त, (1978), Traditions of Indian Mysticism Based upon Nirguna School of Hindi Poetry, दिल्ली, हेरिटेज पब्लिशर्स।
10. लुटगेनडॉर्फ, फिलिप,(1991), The Life of a Text: Performing the Rāmcaritmānas of Tulsidas, ओकलैंड, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस।
11. वॉदविल, शार्लट, (1993), A Weaver Named Kabir: Selected Verses with a Detailed Biographical and Historical Introduction, दिल्ली, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
12. हॉले, जॉन स्ट्रैटन, (2005), Three Bhakti Voices: Mirabai, Surdas, and Kabir in Their Time and Ours, दिल्ली, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
13. हेस, लिंडा, और शुकदेव सिंह, अनुवाद, (2002), The Bijak of Kabir, दिल्ली, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
14. शर्मा, सत्येन्द्रनाथ,(2020), असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिबृत्त, गुवाहाटी, सौमार प्रकाश।
15. S.N. Sarma, (1966), The Neo Vaisnavite Movement and the Sattra Institution of Assam , गुवाहाटी, गौहाटी विश्वविद्यालय।